न्यायपालिका में भ्रष्टाचार

कमलेश जैन

भ्रष्टाचार का शाब्दिक अर्थ है बेईमानी से भरा गैरकानूनी व्यवहार–खासकर उन लोगों का, जिनके पास अधिकार है। यह एक ऐसा काम है जो किसी के व्यवहार को नैतिकता से अनैतिकता में परिवर्तन कर देता है।

आज भ्रष्ठाचार एक या दो जगह तक सीमित नहीं रह गया है। लोकतंत्र की हर विधा–विधायिका, प्रशासन, मीडिया, न्यायपालिका में, पूरे समाज में यह रोग सर्वव्यापक है। जैसे भारत 'डायबिटीज' की विश्व-राजधानी कहा जा सकता है वैसा ही कुछ नाम 'भ्रष्टाचार' ने भी कमाया है। डायबिटीज में पूरे शरीर का रक्त ही शर्करा-मिश्रित हो जाता है, सारे अंग धीरे-धीरे अपनी ऊर्जा खोते रहते हैं। किसी दिन एक अंग ज्यादा प्रभावित हो जाता है और जान पर बन आती है। कुछ वही हाल हमारे देश में भ्रष्टाचार का है।

न्यायपालिका में भ्रष्टाचार आज शीर्ष पर है। सिक्किम उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश पी. डी. दिनाकरन पर

जजेज इंक्वायरी एक्ट, 1968 के तहत, तीन सदस्यीय समिति (दो न्यायाधीश एवं एक न्यायविद्) ने 16 अभियोग लगाए हैं। इन अभियोगों में भ्रष्टाचार, जमीन हड़पना, न्यायिक पद का दुरुपयोग, साक्ष्यों को नष्ट करना तथा मानवीय अधिकारों का हनन शामिल हैं। इन अभियोगों को लगाने में एक वर्ष का समय गुजर गया। कारण, इंक्वायरी से एक न्यायाधीश यह कहकर हट गए थे कि उन्होंने दिनाकरन के साथ बैठकर कई मुकदमों का फैसला दिया था। अब दिनाकरन को इन 16 अभियोगों का जवाब 9 अप्रैल, 2011 तक देना है। यह सब कुछ होता रहा, वकीलों ने उनकी अदालत का बायकाट किया, पर एक जिद्दी राजनीतिज्ञ की तरह उन्होंने अपना पद नहीं छोड़ा।

ऐसा ही कुछ कलकत्ता उच्च न्यायालय के न्यायाधीश सौमित्र सेन ने भी किया। उनका कहना है कि उन्होंने अपने मुवक्किल के पैसे उस समय हड़पे थे जब वे वकील थे और न्यायाधीश का पद संभालने के बाद जब उनसे पैसे मांगे गए तो उन्होंने पैसे वापस भी कर दिए थे, अतः वे अपना पद नहीं त्यागेंगे। वैसे ऐसा ही काम कोई साधारण सरकारी कर्मचारी करे तो उसे अपने पद से हटना पड़ेगा। कारण, गबन की गई रकम वापस करना गुनाह की माफी नहीं है। अपराध तो तभी पूरा हो गया जब गबन किया था। पर फिर भी सोमनाथ चटर्जी जैसे व्यक्ति जो सिद्धांतों के लिए जाने जाते हैं, उनकी वकालत कर रहे हैं कि यह मामला महाभियोग लायक नहीं है और सांसदों से प्रार्थना कर रहे हैं कि वे महाभियोग प्रक्रिया में सौमित्र सेन के खिलाफ वोट न दें। (इंडियन एक्सप्रेस, 16 नवंबर 2010)

उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों में ऐसा करने की हिम्मत एवं बेशर्मी इसलिए है कि उन्हें अपने पद से हटाने की प्रक्रिया नाकों चने चबाने जैसी है। वे तो सिर्फ और सिर्फ महाभियोग की प्रक्रिया द्वारा ही हटाए जा सकते हैं। और ऐसा आज तक हुआ नहीं है।

किसी न्यायाधीश की सत्यनिष्ठा एवं ईमानदारी यदि संदेह के घेरे में आ जाए तो उसे संसद के दोनों सदनों के दो-तिहाई बहुमत से ही हटाया जा सकता है। इसके पहले भी बहुत-सी मुश्किल प्रक्रियाओं से गुजरना पड़ता है। एक न्यायाधीश को हटाने की प्रक्रिया पूरी सरकार को गिराने की प्रक्रिया से भी ज्यादा कठिन है। कारण सरकार साधारण बहुमत से गिराई जा सकती है। ऐसा इसलिए किया गया था कि न्यायपालिका को प्रशासनिक हस्तक्षेप का शिकार न बनना पड़े। पर समय ने बताया है कि कुछ न्यायाधीशों ने न्यायिक स्वतंत्रता को इस तरह भुनाया है कि यह न्यायिक निर्भयता या दुस्साहस में परिवर्तित हो गई है।

'जजेज इंक्वायरी एक्ट' की कमियों को देखते हुए 'जुडिशियल स्टैंडर्ड्स एंड एकाउंटेबिलिटी बिल' लाया जा रहा है। इसकी प्रक्रिया कम दुरूह होगी, उच्च एवं उच्चतर अदालतों के न्यायाधीशों के खिलाफ (भारत के मुख्य न्यायाधीश सहित) शिकायतें सुनी जा सकेंगी और जिनके खिलाफ भ्रष्टाचार एवं अनुचित व्यवहार की शिकायतें होंगी उन्हें उच्च न्यायालयों में पदस्थापित नहीं किया जा सकेगा। इससे उच्च पदों पर अच्छे लोगों को आने का अवसर मिलेगा। पर इस बिल को अभी तक हरी झंडी नहीं मिल पाई है। कारण, अत्यंत गहरे और परेशान करने वाले हैं।

उच्च न्यायालयों एवं सर्वोच्च न्यायालय में न्यायाधीशों की नियुक्ति आज सर्वोच्च न्यायालय के 'कोलिजियम' के पास है। नतीजा है—आज वे ही लोग इन पदों पर हैं जो न्यायाधीशों के रिश्तेदार, मित्र परिवारों के हैं, बड़े परिवारों के हैं। साधारण परिवार के, ईमानदार, मेहनती एवं मेधावी लोगों के लिए यहां कोई जगह नहीं है। निचली अदालतों में न्यायिक पदाधिकारी चुने जाने के लिए कुछ परीक्षाएं हैं, पर उच्च न्यायालयों के लिए योग्यता—उच्च न्यायालय में मात्र दस वर्ष वकालत है। वहां उनका भी चुनाव होता है जो पैरवी से सरकारी वकील बने, न्यायालयों में जिन्होंने कभी बहस नहीं की, हमेशा जूनियरों द्वारा बहस करवाई।

भ्रष्टाचार का चेहरा हर जगह एक तरह का नहीं है। यह

हर जगह अलग-अलग भूमिका में, अलग-अलग मुखौटे में पाया जाता है। उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति-प्रक्रिया पूरे विश्व में अपने तरह की अकेली है। यहां न्यायाधीश खुद अपनी नियुक्ति कर लेते हैं, अपनी तनख्वाह, सुविधाओं, भ्रमण, बंगलों को सजाने की अनुशंसा करते हैं, और सरकार उन्हें बस मान लेती है। उस पर किसी प्रकार का अंकुश नहीं है।

कानूनी जानकारी की कमी या अयोग्यता भी इन पदों पर आसीन लोगों के लिए एक तरह का भ्रष्टाचार ही है। भ्रष्टाचार का अर्थ सिर्फ घूस लेना-भर ही नहीं है। अपनी अयोग्यता से मुकदमों की बारीकी को न समझना, काफी देर से गलत फैसले देना, लोगों को उच्चतम न्यायालयों तक पहुंचने के लिए मजबूर करना एवं वहां से भी अन्याय का सामना करना भी भ्रष्टाचार का ही एक रूप है।

न्यायालयों में भ्रष्टाचार का एक रूप न्यायाधीशों का भाई-भतीजावाद भी है। यह सच है कि साधारणतया एक न्यायाधीश के अपने रिश्तेदार उसके कोर्ट में बहस नहीं करते, पर जब यह रिश्तेदार किसी और न्यायाधीश के सामने बहस करते हैं तो एक सहानुभूति-भरा रवैया उन्हें अवश्य ही फायदा पहुंचाता है। उन्हें मुकदमें में रखने वाले मुवक्किल इस सच को जानते हैं और तभी उन्हें अपना वकील नियुक्त करते हैं। एक साधारण पृष्ठभूमि से आया वकील न्यायाधीश के 'डिस्क्रीशनरी' (स्वविवेक पर आधारित निर्णय) फेवर का लाभ नहीं उठा पाता है और इस तरह एक अदालत परिसर में 10-15 ऐसे वकील होते हैं जो महीनों में लाखों की कमाई कर डालते हैं। इन्हीं वकीलों को बड़े प्रतिष्ठान, सरकार तथा अन्य बड़े लोग अपना वकील बनाते हैं और यह सिलसिला चलता रहता है। (सर्वोच्च न्यायालय ने हाल ही में एक उच्च न्यायालय पर यह टिप्पणी की थी)

आज से 20-25 वर्ष पहले परिस्थितियां इतनी नहीं बिगड़ी थीं। भाई-भतीजावाद था, पर अपने चरम पर नहीं था। साधारण लोगों का काम भी कुछ चल जाता था पर आज यह अपने चरम पर है। अब तो वकालत पास करते ही बड़े वकीलों के ऑफिसों के दरवाजे केवल न्यायाधीशों, मंत्रियों या बड़े वकीलों के रिश्तेदारों के लिए खुले हैं। वैसे भी, अदालतों में नए वकीलों को ट्रेनिंग देने के लिए एक आम व्यवस्था होनी चाहिए थी, वह बिल्कुल ही नहीं है। दिल्ली, मुंबई जैसी जगहों में वकालत एक कॉरपोरेट हाउस में बदल गई है जहां साधारण मुवक्किलों का अपने मुकदमें लड़ना अत्यंत ही मुश्किल काम है।

निचली अदालतें, जो भारतीय न्याय व्यवस्था की रीढ़ कही जा सकती हैं और जहां मुकदमा लड़ने वालों का 80-90 प्रतिशत जाता है वहां की हालत बड़ी बुरी है। वहां इतनी बड़ी भीड़, उससे भी बड़े बदइंतजाम में, इकट्ठी होती है कि लगता है कि हम किसी मेले में आ गए हैं। मुवक्किलों के लिए तो खैर कोई जगह बैठने की, पीने का पानी, पंखा आदि की व्यवस्था है ही नहीं, वकील भी काला कोट पहने, पसीना बहाते, प्यासे खड़े रहकर अपने केस के आने की बारी का इंतजार करते रहते हैं। जब मुकदमें की पुकार होती है तो किसी तरह अपनी बहस जल्दी-जल्दी करते हैं जबकि यह काम आराम से कुर्सी पर बैठकर ही ठीक से किया जा सकता है।

न्यायिक अफसर भी मुकदमों की भीड़ में जल्दी-जल्दी समय देता या बहस सुनता होता है। खुद ही गवाही लिखता है या फैसला लिखता है। भारत की अधिकांश निचली अदालतें भयंकर 'इंफ्रास्ट्रक्चर' की कमी से परेशान हैं। अब उनकी तनख्वाह अवश्य ही अच्छी हो गई है, पर जब तक उनके स्टाफ और वकीलों के काम करने का माहौल नहीं बदलेगा स्थितियां अच्छी नहीं रहेंगी। हाल ही में सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश एस. एच. कपड़िया ने कहा– कि निचली अदालतें गौशालों और स्नानगृहों में चल रही हैं, वकील साइकिल स्टैंड में बैठते हैं। यह हालत मुंबई, ग्रेटर मुंबई और उड़ीसा के छोटे शहरों की है।

वकील भी अपनी-अपनी व्यक्तिगत आचार-संहिताओं

के तहत वकालत करते हैं और ऐसे में ज्यादातर इसे एक सम्मानित पेशे के तहत सेवा-कार्य करने का न समझ सिर्फ पैसा कमाने का जरिया समझते हैं, जबकि वकालत का पेशा भी अपने काम के प्रति ईमानदारी, लगन, मुवक्किल के प्रति निष्ठा की मांग करता है। यदि वह उचित न्याय पाने के लिए काम नहीं करता तो यह इस पेशे के साथ बेईमानी ही है।

समय-समय पर कानून की अपडेटिंग होती है पर उस हिसाब से वकीलों एवं निचली अदालतों के न्यायिक अधिकारियों के ज्ञान की अपडेटिंग नहीं होती। सेवा-भावना के अभाव में जानबूझकर एक की जगह कई-कई मुकदमें फाइल किए जाते हैं, जैसे कि पति-पत्नी के बीच की अनबन को वकीलों द्वारा भरण-पोषण के अधिकार, तलाक, दहेज कानून के अंतर्गत अलग-अलग मुकदमे फाइल कर भुनाया जाता है। सही सलाह न देने की वजह से ही आज 'दहेज कानून' एक कानूनी माहौल बनकर रह गया है, इसके बेतहाशा गलत इस्तेमाल से अब यह कानून बदला जाने वाला है। ऐसे अधिकांश मामलों को 'मिडियेशन सेंटर्स,' जो भारत की हर अदालत में मौजूद हैं, के द्वारा सुलझाया जा सकता है। कुछ लालची बहुओं, उनके माता-पिता और वकीलों की मिलीभगत ने परिवारों के अंदर अशांति, घृणा एवं अंततः घर टूटने का माहौल पैदा कर दिया है, कितने ही बच्चों का भविष्य अंधकारमय बना दिया है। न्यायिक व्यवस्था के भ्रष्टाचार का यह भी एक रूप है।

इसी तरह भारतीय जेलों की भारी भीड़ उन लोगों की है जो छोटे अपराधों में अंदर आए हैं। ये लोग गरीब तथा अशिक्षित भी हैं। ये अच्छा वकील नहीं रख पाते और न ही इनकी पहुंच कहीं है। इनके लिए 'प्रोबेशन ऑफ आफेंडर्स एक्ट' है, जिसके तहत पहली बार छोटा जुर्म करने वाला व्यक्ति बांड पर छोड़ा जा सकता है। पर ऐसा होता नहीं है। अदालतें शायद ही प्रोबेशन ऑफिसर को अपनी रिपोर्ट देने का काम सौंपती हैं। परिणामस्वरूप साल-छह महीने की सजा की जगह कैदी बिना जमानत के सालों जेलों में कैद रहते हैं। उनके पीछे उनका परिवार पूरी तरह समाप्त हो जाता है। तो दूसरी तरफ हसन जमाल जैसे व्यक्ति जिन्होंने तीन-तीन मुख्यमंत्रियों सहित कितने ही लोगों की रकम जो कि अनुमानतः 8 अरब डॉलर है, विदेशों में जमा कर दी है, निचली अदालत से जमानत पाकर शान से बाहर रहते हैं। कभी-कभार ऐसे लोगों की जमानत सर्वोच्च न्यायालय से रद्द हो जाती है। पर जयललिता एवं लालू यादव जैसे लोग सर्वोच्च न्यायालय से ही राहत भी पा जाते हैं। 13 वर्षों बाद पूर्व प्रधानमंत्री आई. के. गुजराल खुलासा करते पाए जाते हैं कि चीफ जस्टिस पुंछी पर आरोप था कि उन्होंने सुप्रीम कोर्ट जज की हैसियत से चंडीगढ़ की एक संपत्ति पर निर्णय दिया था जिससे उनके बेटे और बहू को फायदा हुआ। उन्होंने अपनी नाबालिग बेटियों को जमीन के दो प्लॉट भी आवंटित करवाने में मदद की। हालांकि ये प्लॉट बाद में कैंसिल हो गए थे। पर जस्टिस पुंछी अंततः भारत के मुख्य न्यायाधीश हो गए। गुजराल साहब ने पुंछी पर कार्यवाही न करने का आरोप पूर्व मुख्य न्यायाधीश जे. एस. वर्मा पर लगाया है। इसी वजह से पुंछी साहब के सर्वोच्च पद पर आसीन होने का रास्ता साफ हो गया।

जिस दिन से बालाकृष्णन साहब ने भारत के मुख्य न्यायाधीश का पद संभाला उसी दिन से उनके निर्णयों की आलोचना होने लगी। पहले ही निर्णय में उन्होंने जस्टिस अशोक कुमार को परमानेंट कर दिया, जबकि उन पर लगे आरोपों की वजह से वह पिछले सात-आठ वर्षों से प्रोबेशन पर चल रहे थे। एक मुख्य न्यायाधीश के बतौर उन्होंने कॉलेजियम का भी ध्यान नहीं रखा और सैकड़ों निर्णय अकेले ही लिए। कह सकते हैं कि यह न्यायपालिका का तानाशाही का दौर था। इसी काल में उनके बेटे, दामादों ने करोड़ों की संपत्ति बनाई। इन्हीं आरोपों से घिरे हुए वे सेवानिवृत्त हो गए। सरकार पर इसका कोई असर नहीं हुआ और उन्हें राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग का चेयरमैन बना दिया गया। खुद भ्रष्टाचार के आरोपों से लड़खड़ाती सरकार को बालाकृष्णन के रूप में 'क्रचेज' का सहारा नजर आया। न्यायपालिका को

'गुड ह्यूमर' में रखना कार्यपालिका की मजबूरी है जो ऐसे भ्रष्ट न्यायिक अधिकारी को कुर्सी देकर ही किया जा सकता है। वर्षों पहले यूनियन कार्बाइड के मुकदमे में सर्वोच्च न्यायालय के जस्टिस अहमदी ने जिस तरह यूनियन कार्बाइड को राहत दी, एंडर्सन को देश छोड़ने में मदद की, उसकी भर्त्सना कानून मंत्री वीरप्पा मोइली ने की थी। तब सर्वोच्च न्यायालय या जस्टिस अहमदी का बचाव किसी ने नहीं किया। इसीलिए समाजसेवी संस्थाओं ने खुलकर कहा कि भोपाल गैस मामला राजनीतिज्ञों, प्रशासनिक अधिकारियों एवं न्यायपालिका के बीच एक अनैतिक षड्यंत्र था।

सरकार अपना मतलब साधने के लिए अलग-अलग अवसरों पर अलग-अलग बात करती है। इसका एक उदाहरण भारत के मुख्य न्यायाधीश वाई. के. सभ्भरवाल एवं बालाकृष्णन के बारे में दिए गए जवाबों से दिया जा सकता है। एक आर. टी. आई. के सवाल के जवाब में सरकार द्वारा कहा गया था कि सभ्भरवाल राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के चेयरमैन नहीं हो सकते। कारण, मीडिया में उनके खिलाफ बातें हो रही हैं, जबकि यह पद पिछले डेढ़ वर्ष से खाली पड़ा था, पर जब यह पद बालाकृष्णन को देना था तो मीडिया की आलोचनात्मक रिपोर्ट के बावजूद उन्हें वहां बैठा दिया गया। आज हर तरह के अभियोगों के बाद भी वे कुर्सी पर बैठे हैं। यह एक ऐसा गठजोड़ है जिसकी भरपाई भारत की जनता को करनी पड़ रही है।

हाल में 'इंडिया न्यूज' चैनल पर मेरे और पूर्व चीफ जस्टिस जे. एस. वर्मा के बीच एक डिबेट में मैंने कहा था कि 'कॉलेजियम' द्वारा न्यायाधीशों का चुनना एक ऐसी प्रक्रिया है जो लोकतंत्र सिद्धांतों के खिलाफ है। ऐसा विश्व में और कहीं नहीं होता। इस पर उन्होंने कहा–'पर इस पर कोई विरोध नहीं होता यानी हमारी नियुक्तियां सही होती है।' मेरा जवाब था–'विरोध होने पर भी आप लोग मानते कहां हैं, वही करते हैं जो आप करना चाहते हैं और इसका खामियाजा गरीब, लाचार जनता को भरना होता है।' इस पर वे चुप रहे। बातचीत इस बिंदु पर हो रही थी कि सर्वोच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश के अनुसार सरकार न्यायपालिका को पर्याप्त फंड नहीं देती। उन्होंने कहा था–'हम जब जितना मांगते हैं फंड मिल जाता है, उसकी कमी नहीं है।' पर मेरा जवाब था कि यह फंड सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के लिए है, निचली अदालतों के इंफ्रास्ट्रक्चर के लिए नहीं है जहां काम करने के हालात अच्छे नहीं हैं।

न्यायाधीश अपने पद एवं सरकार दोनों के बचाव में बोल सकते हैं। कारण, वे आराम से हैं। पर न्यायिक व्यवस्था से आम वकील, आम जनता दुखी है। उनके अनुसार यह सारी व्यवस्था एक उच्चस्तरीय खाप पंचायत से ज्यादा कुछ नहीं है, जहां जाति, वर्ग, रसूख, मनमानी मायने रखता है। इक्का-दुक्का भ्रष्टाचारों का उजागर होना, उन पर अंकुश लगाने का काम चलता रहता है जो न्यायपालिका की छवि को एक कवच प्रदान करता रहता है, पर ज्यादातर लोग न्याय के हाशिए से बाहर हैं। उनका गुस्सा अंदर ही अंदर उबाल खा रहा है, वे बेचैन हैं एक 'रूल ऑफ लॉ' स्थापित करने के लिए। यह समय लंबा हो सकता है, पर ऐसा कभी होगा ही नहीं, यह नहीं कहा जा सकता।

न्यायपालिका का यह खेल, कि उनके लिए कानून, नैतिकता का स्तर अलग है तथा बाकी लोगों के लिए अलग, अब ज्यादा दिन चलने वाला नहीं है। जनता जवाब चाहती है कि क्यों देश में सभी के लिए राजनीतिज्ञों सहित अपनी संपत्ति का ब्योरा देना आवश्यक है और उनके लिए नहीं? दूसरे लोग आर. टी. आई. के तहत अपने काम करने और नहीं काम करने की बाबत जवाबदेह हैं पर न्यायपालिका क्यों नहीं? आरोपों के घेरे में रहने के बावजूद दिनाकरन, बालाकृष्णन, सौमित्र सेन अपने पदों पर कायम हैं। अच्छी तनख्वाह एवं बहुत सारी सुविधाओं से लैश जज–आर. पी. मिश्रा, आर. पी. यादव, आर. एन. मिश्रा, ए. के. सिंह, आर. एस. चौबे तथा अरुण कुमार पर चार्जशीट आ गई है। अभियोग है कि उन्होंने तृतीय एवं चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों के प्रोविडेंट फंड की

गाढ़ी मेहनत की कमाई को लूट लिया था अपने राशन, फल, फर्नीचर, गहने, टैक्सी-चार्ज एवं फोटोग्राफी के लिए।

जो लोग अपना लोभ छोटी-छोटी चीजों के लिए संवरण नहीं कर पाते, क्या वही देश के उन करोड़ों गरीबों का फैसला करने लायक हैं जिन्हें गहने, फर्नीचर, फल, टैक्सी और फोटोग्राफी कभी नसीब नहीं होती।

भ्रष्टाचार की यह बानगी तो सिर्फ हिमखंड की चोटी को दर्शाती है। जिस दिन नियुक्तियां, अदालती कार्यवाही, न्यायाधीशों की संपत्ति का ब्यौरा न्यायाधीश बनने के बाद, उनके सम्मान में हो रही यात्राएं, सभाएं पारदर्शी हो जाएंगी, तभी न्यायपालिका जनता की निगाह में वह स्थान पा सकेगी, जो उसे पाना चाहिए। वरना अंग्रेजी शब्द 'होली डे' (पवित्र दिन) जिस तरह कालांतर में भ्रष्ट होकर 'होली डे' (छुट्टी) बन गया है, मुझे डर है कि न्यायपालिका की छवि भी न्याय के मंदिर से बदलकर न्याय की दुकान न हो जाए।